स्त्री सशक्तीकरण का राजनीतिक एजेंडा-2

विकास नारायण राय

बलात्कार-हत्या पर राजनीतिक रोटियाँ सेंकने के लिए बदायूं के कटरा सादतगंज गाँव में पहुँचनेवाले राजनेताओं को उपेक्षा से नहीं लेना चाहिए। न इस जमात के दूर से ऊल-जलूल अर्ध-सत्य बोलनेवालों को। दरअसल इन सतही कवायदों में स्त्री सशक्तीकरण के पैरोकारों के लिए एक निहित सन्देश है—स्त्री विरुद्ध हिंसा के मसलों पर समग्र राजनीतिक एजेंडे की सख्त जरूरत है। मीडिया, एन जी ओ और कानून के दम पर यह जंग एक सीमा से आगे नहीं जा पा रही। मर्द और औरत के बीच असमान लैंगिक सम्बन्धों को राजनीति के विषम शक्ति सम्बन्धों के समांतर भी रख कर देखना होगा। ग्रामीण क्षेत्रों में बदायूं जैसे कांडों को जैसे महिला शौचालयों का अभाव संभव करता है, उससे कहीं बढ़कर अमानवीय दबंगई को शह देनेवाला राजनीतिक वातावरण भी।

सीनाजोर यौन हिंसा न बदायूं तक सीमित है और न उत्तर प्रदेश तक। न गावों तक और न किसी पार्टी विशेष के शासन तक। लिहाजा, बजाय इसे महज कानूनी या प्रशासनिक सवालों में बांधे रहने के इसके राजनीतिक एजेंडे पर भी बात होनी चाहिए—क्या लिंग संवेदी पुलिस, राष्ट्रीय राजनीति के एजेंडे पर हैं? क्या महिलाओं के लिए सुरक्षित शौचालय का मुद्दा राजनीतिक दलों की चुनावी प्राथमिकताओं में शामिल है? औपनिवेशिक तेवर से चलायी जा रही कानून-न्याय व्यवस्था के लोकतांत्रीकरण को लेकर उनकी राजनीतिक समझ क्या है? विधायिका में महिला आरक्षण को राजनेता कब तक अमली जामा पहना पाएंगे? पंचायती राज और स्थानीय निकायों में आरक्षित सीटों पर चुनी महिलाओं का राजनीतिक स्पेस उनके पतियों ने कैसे हथिया रखा है? समाज में अराजक यौन विस्फोट की चुनौती के सामने यौन शिक्षा का परिदृश्य नदारद क्यों है?

इस बीच, बदायूं दरिन्दगी के क्रम में घोषित उत्तर प्रदेश सरकार का पांच लाख रुपये का मुआवजा, शिकार बहनों के लिए 'न्याय' का हिस्सा नहीं बना है। सरकारों के लिए पीड़ित पक्ष को आर्थिक मदद देना आसान होता है पर 'न्याय' करने में उन्हें समूची राजनीतिक सामाजिकता को शीशे में उतारना पड़ता है। 'मुआवजा' एक रूटीन प्रशासनिक कदम है, जबकि 'न्याय' के दायरे में तो सत्ता राजनीति की अग्नि-परीक्षा भी होगी। इसी समीकरण के चलते बदायूं में न प्रदेश सरकार का कोई समाजवादी मंत्री तुरंत पहुंचा और न केंद्र सरकार का कोई भाजपाई मंत्री। जो अन्य राजनेता वहां पहुंचे उन्होंने भी स्वयं को 'जंगल राज' को कोसने के प्रशासनिक एजेंडे और अपराधियों को कठोर दंड देने के कानूनी एजेंडे तक सीमित रखा। स्पष्ट है कि मर्दवादी सामाजिकता की खुराक पर पलनेवाले राजनेताओं की दिलचस्पी स्त्री सशक्तीकरण के राजनीतिक एजेंडे में नहीं होने जा रही।

बदायूं काण्ड ने अखिलेश सरकार के अक्षम प्रशासन को ही नहीं उसकी लम्पट राजनीति को भी नंगा किया है। इसे तार्किक परिणति तक ले जाने के लिए जनता को अगले चुनाव का इन्तजार रहेगा। पर पुलिसिया मिलीभगत और न्यायिक निष्क्रियता के ऐसे मामलों में, मुआवजे के अलावा, कानून व्यवस्था बेहतर करने के नाम पर प्रशासनिक फेर-बदल, निष्पक्षता के नाम पर सी बी आइ की जांच और जवाबदेही के नाम पर दोषियों/पुलिसवालों को कठोरतम दंड सुनिश्चित करने के सिवा और क्या किया जा सकता है। स्पष्ट है कि पैसे और प्रभाव के दम पर की जानेवाली यौनिक सीनाजोरियां, आज के मीडिया युग में, किसी भी शासन की साख के ग्राफ को राजनीतिक रसातल में पहुँचा सकती हैं। यह भी स्पष्ट है कि कानून एवं न्याय की प्रणालियों का लोकतांत्रीकरण और उनमें कार्यरत कर्मियों की लिंग संवेदी उपस्थिति वे अनिवार्य पूर्वशर्तें होंगी जिनसे लैंगिक न्याय की राजनीति में लोकतांत्रिक संतुलन मजबूत होगा।

स्त्री की सुरक्षा का सवाल उतना ही पुराना है जितना उसकी पुरुष-निर्भरता का इतिहास। सुरक्षा के नाम पर उसके लिए नैतिक और धार्मिक 'कवच' कम नहीं हैं; साथ ही पारिवारिक, सामाजिक, कानूनी और प्रशासनिक एजेंडों की भी भरमार है। पर 'निर्भया' या 'बदायूं' जैसी सामूहिक बलात्कार-हत्या की दरिन्दगी का विस्फोट समय-समय पर याद दिलाते रहने के लिए पर्याप्त है कि ये एजेंडे यथास्थिति का तोड़ नहीं दे पाए हैं। दरअसल, इन लैंगिक नृशंसताओं को संभव करने की राजनीति की टक्कर का प्रति-एजेंडा दे सकनेवाली राजनीतिक जमीन को तोड़ने का वक्त अभी आना है। इस हद तक, स्त्री-विरुद्ध हिंसा के राजनीतिकरण की हर कवायद को सकारात्मक ही कहा जाएगा।

मसलन, बदायूं काण्ड अंजाम होने में सहायक परिस्थितियां, पीड़ितों की अँधेरे में खुले में शौच की विवशता या पुलिस की दबंग अपराधियों के पक्ष में घातक निष्क्रियता, राजनीतिक एजेंडा पर आने पर ही बदलेंगी। लैंगिकता के राजनीतिक एजेंडे पर सबसे पहले एक स्वीकारोक्ति दर्ज करनी होगी कि स्त्री की सुरक्षा उसे विवश बनाये रख कर नहीं की जा सकती। पुराना चलन रहा है कि स्त्री को कमजोर रखो और उसके परिवार/परिवेश के मर्द उसकी सुरक्षा करें। पर इससे स्त्री सुरक्षित नहीं की जा सकी। दिसंबर 2012 के बर्बर निर्भया प्रसंग के बाद यह जिम्मा 'कठोर' एवं 'मजबूत' कानूनों के हवाले करने की प्रथा चल पड़ी है। पर स्त्री ज्यों की त्यों असुरक्षित है क्योंकि वह अभी भी परिवार और समाज की सत्ता राजनीति का सबसे कमजोर मोहरा है। यानी मर्दों के अनुशासन में या कानूनों के घेरे में स्त्री स्वयं को सुरक्षित नहीं पा रही है। दरअसल, आज स्त्री की सुरक्षा की पूर्वशर्त है कि स्त्री स्वयं सशक्त हो। महज कड़े कानून बनाने से यह सशक्तीकरण नहीं हो सकता। महज समाज की सतह पर स्त्री की उपस्थिति बढ़ने से उसकी लैंगिक स्थिति मजबूत नहीं हो जाती। यह स्पष्ट रूप से समझा जाना चाहिए कि लोहे की बेड़ियों को लोहे की धार ही काटेगी। स्त्री सशक्तीकरण के मुद्दे को राजनीतिक एजेंडे पर भी लाये बिना स्त्री की सुरक्षा के लिए वांछित वातावरण बनाने की दिशा में और आगे बढ़ पाना संभव नहीं लगता।

इस सन्दर्भ में दूसरा जरूरी पहलू स्त्री सुरक्षा के सामंती तौर-तरीकों को नकारने की इच्छाशक्ति दिखाने का है। स्त्री सुरक्षा को, राखी व्यवस्था या पर्दा व्यवस्था या ड्रेस-कोड, चारदीवारी या पहरेदारी, यहां तक कि पुलिस गश्त-नाकेबंदी जैसे उपायों के हवाले करने की व्यर्थता को स्वीकार कर ही हम आगे बढ़ सकते हैं। याद रखना चाहिए कि इन सामंती तौर-तरीकों से स्त्री सशक्त नहीं हुयी है बल्कि सामंती जीवन-मूल्य सशक्त हुए हैं। स्त्री के सशक्तीकरण के लिए उसके जीवन में लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित रास्ते, जैसे कानून, न्याय एवं पुनर्वास से सकारात्मक मिलाप की गारंटी, पैतृक सम्पत्ति में बराबरी, जीवनसाथी चुनने की स्वतंत्रता, शिक्षा, कैरियर एवं मातृत्व चुनने का अधिकार, पारिवारिक-सामाजिक-आर्थिक निर्णयों में भागीदारी, इत्यादि बेहद आक्रामक रूप से खोलने होंगे।

इन रास्तों पर राजनीतिक पहल के अभाव को मीडिया या एन जी ओ की मुहिम से भरा नहीं जा सका है। न विधिक दखल और न्यायपालिका की सक्रियता इस शून्य को भर पायी हैं। इस सन्दर्भ में सामाजिक चेतना की रुग्णता को देश भर में खाप मानसिकता से की जाने वाली 'इज्जत' हत्याओं व एसिड हमलों में देखा जा सकता है। 'उदारवादी' पहल के नाम पर, ऐसी हिंसा के लिए बदनाम राज्य हरियाणा की दो खापों ने अंतर्जातीय विवाहों पर से सदियों पुरानी रोक हटाने का निर्णय लिया है। राजनीतिक, सामाजिक और मीडिया टिप्पणियों में इसे प्रगतिशील कदमताल करार दिया गया जबकि खापों ने वास्तव में अपने समाज में प्रचलित कन्या भ्रूण-हत्या और स्त्री-तस्करी पर मोहर लगाने का अपराध किया। क्योंकि व्यापक भ्रूण-हत्याओं से लड़कियों की कमी के चलते इन्हें पत्नियां आर्थिक एवं जातीय रूप से कमजोर क्षेत्रों/तबकों से खरीद कर लानी पड़ रही हैं। तीसरा महत्वपूर्ण राजनीतिक मुद्दा बनेगा वर्तमान स्त्री सम्बन्धी कानूनी प्रावधानों और प्रक्रियाओं का स्त्री के दृष्टिकोण से पुनरावलोकन का। अब तक हुआ यह है कि स्त्री सुरक्षा को लेकर बने तमाम कानूनों ने राज्य को सशक्त किया है, न कि स्त्री को। अपराधियों की सजाएं बढ़ाने या कानून-न्याय मशीनरी को कोसने से न पीड़ित को धक्के खाने से राहत मिलती है और न आगे के लिए स्त्री-विरुद्ध अपराधों पर रोक लगने में मदद। बस असंवेदी राज्य मशीनरी की शक्तियों में वृद्धि जरूर हो जाती है। जबकि स्त्री के नजरिये से बने कानूनों की कसौटी ही यह होगी कि पीड़ित को घर बैठे सहायता व 'रीयल टाइम' में राहत उपलब्ध हो? उसे न्याय व पुनर्वास समयबद्ध मिले। यही नहीं, कानून व्यवस्था/न्याय व्यवस्था से जुड़े किसी भी अधिकारी/कर्मचारी के लिए लिंग-संवेदी प्रामाणित होना भी अनिवार्य होगा।

समाज में स्त्री के पारंपरिक देवी-सती-रंडी-डाइन जैसे स्टीरिओटाइप को तोड़ना, उसके सशक्तीकरण की राह का चौथा चरण होगा। स्त्री की परजीवी, पराश्रयी, उपभोग्या, कुटनी जैसी छवि को मजबूत करनेवाले तमाम सामाजिक-सांस्कृतिक रूपों का तिरस्कार करना होगा। लोकप्रिय मीडिया माध्यमों जैसे समाचारपत्रों, पत्रिकाओं, टी वी, सिनेमा, इन्टरनेट इत्यादि पर पुरुषवादी नजरिये से स्त्री के अपमानजनक या गैर-बराबरी के चित्रण को नए सिरे से अपराध घोषित करना होगा। सास, बहू के साथ 'साजिश' को अनिवार्यत: नत्थी करनेवाले सजा के पात्र होंगे। बलात्कार को 'लड़के हैं गलती हो जाती है' कहकर टालनेवाले और छप्पन इंच के सीने से 'मर्दानगी' को महिमामंडित करनेवाले राजनेता चुनाव से बहिष्कृत किये जायेंगे। सुरक्षा/पुलिस बलों के मर्दाने मानक कूड़ेदान में होंगे।

और अंत में जरूरी है कि स्त्री के विरुद्ध नियमित रूप से होनेवाली लैंगिक हिंसा को उसके केवल एक रूप यौनिक हिंसा के चश्मे से देखने का रिवाज बंद किया जाय। जो समाज बसों, कार्यस्थलों और निर्जन स्थानों में बलात्कार और छेड़-छाड़ को लेकर इतना उद्वेलित हो उठता है, वह घर-घर में रोजमर्रा के लैंगिक उत्पीड़न और कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव पर चुप्पी साधे रहता है। स्त्री के जन्म से शुरू होकर भेदभाव और हिंसा का खेल कमोबेश उसके जीवन-भर चलता ही रहता है। दरअसल यौनिक हिंसा की जड़ें लैंगिक असमानता की जमीन से ही खुराक पाती हैं। परिवार से लेकर समाज तक सिखलाई यही है कि हावी पुरुष अपनी मनमानी को तरह-तरह से स्त्री की कीमत पर व्यक्त कर सकता है। 'मर्यादा' और 'इज्जत' के नाम पर स्त्री चुपचाप सहे या फिर निर्भया/बदायूं, खाप/एसिड भुगते।

क्या भारतीय स्त्री की दुनिया ऐसे ही चलने दी जायेगी? वंचना और हिंसा, अपमान और अन्याय के दंश से उसका जीवन मुक्त होगा। क्या सामाजिक-आर्थिक वंचनाएं, भ्रूण हत्याएं, एसिड हमले या खाप-हत्याएं किसी सामूहिक बलात्कार से कम दरिन्दगी के प्रसंग हैं? क्या हर मर्द को लैंगिक मुस्टंडा बनाकर उसका परिवार ही उसे संभावित यौन अपराधी के रूप में तैयार नहीं करता है? क्या स्त्री को एक संवेदी कानूनी/प्रशासनिक परिवेश मिलेगा। राजनीति को बदले बिना स्त्री का पारिवारिक, सामाजिक और कार्यस्थल का वातावरण बदलेगा ?इसी विमर्श से स्त्री का राजनीतिक एजेंडा निकलता है। इसे लागू करने के लिए ग्राम पंचायतों और स्थानीय निकायों से लेकर विधानमंडलों तक में स्त्रियों का आरक्षण भी, मनोवैज्ञानिक कवायद ही सिद्ध होगा। स्त्रियों के लैंगिक सशक्तीकरण की राजनीति गाँव-गाँव, गली-गली, घर-घर पहुंचनी चाहिए।

मछली बाजार

घड़ियाली आंसू : छिपाने की भी जरूरत नहीं!

अशरफ़

घड़ियाल अपने आंसू नहीं छिपाता। दिखावटी आंसुओं के माध्यम से उसे अपनी सदाशयता का तिलिस्म जो गढ़ना होता है। भारतीय शासक वर्ग और उनका जरखरीद मीडिया भी इसी तर्ज पर काम करता है। आइये उसके चंद हालिया आंसुओं का एक जायजा लेते हैं।

मुम्बई की कैम्पाकोला सोसायटी के कुछ अनधिकृत फ्लैट सर्वोच्च न्यायालय तक लड़ाई के बावजूद गिराए जाने के आदेश कायम हैं। सभी मानते हैं कि बिल्डरों ने शासन और प्रशासन की मिलीभगत से करीब तीन दशक पहले लोगों को बेवकूफ बनाकर ये फ्लैट बेचे थे। अब टी वी चैनलों ने क्रांतिकारी अंदाज में इस मुद्दे को प्रमुखता से उठा रखा है क्योंकि सम्बन्धित फ्लैटधारक खाते-पीते मध्य-वर्ग के लोग हैं। अन्यथा रोज इस देश में गरीब तबकों की हजारों झुग्गियों को अनधिकृत बताकर सौन्दर्यीकरण या विकास के नाम पर बुलडोजरों के हवाले किया जाता है और ये तमाम चैनल चूं भी नहीं करते।

इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय की भी बलिहारी है। बिल्डरों, राजनेताओं, अफसरों के कुकर्मों की सजा बेचारे फ्लैटधारकों को दी गयी है। न्याय का तकाजा तो यह था कि जिम्मेदार शासकों/प्रशासकों/बिल्डरों को सर्वोच्च न्यायालय तुरंत जेल भेजने का आदेश पारित करता। साथ ही महाराष्ट्र सरकार के जिम्मे लगाता कि सोसायटी के अनधिकृत फ्लैट गिराने से पहले प्रभावित फ्लैटधारकों को एक उचित समय सीमा में वैकल्पिक फ्लैट दिए जायें। पर न्याय तो वहीं तक देख सकता है जहां तक उसे मंहगे वकीलों की टीम रास्ता दिखाती है।

बदायूं हत्या-बलात्कार काण्ड के सन्दर्भ में प्रधानमंत्री मोदी से लेकर कारपोरेट मीडिया तक महिला सुरक्षा के मुद्दे पर बड़ी-बड़ी बनावटी बातें करने में व्यस्त हैं। इनमें से कोई भी अपनी भूमिका को लेकर क्षमाप्रार्थी नहीं है। न राजनेता, न पुलिसवाला, न मीडियाकर्मी! इसके बरक्स इजिप्ट में नवनिर्वाचित राष्ट्रपति सिसी ने अस्पताल जाकर बलात्कार की शिकार महिला से व्यक्तिगत रूप से माफी माँगी। यह महिला सिसी के निर्वाचित होने पर हुए सार्वजनिक जश्न में यौनिक हमले का शिकार बनी थी। भारत की तरह इजिप्ट में भी महिलाओं के विरुद्ध यौन हिंसा एक सतत समस्या रही है। पर वहां के राष्ट्रपति ने इसे राष्ट्रीय/सामाजिक शर्म के रूप में

बदायूं हत्या-बलात्कार काण्ड के सन्दर्भ में प्रधानमंत्री मोदी से लेकर कारपोरेट मीडिया तक महिला सुरक्षा के मुद्दे पर बड़ी-बड़ी बनावटी बातें करने में व्यस्त हैं। इनमें से कोई भी अपनी भूमिका को लेकर क्षमाप्रार्थी नहीं है। न राजनेता, न पुलिसवाला, न मीडियाकर्मी! इसके बरक्स इजिप्ट में नवनिर्वाचित राष्ट्रपति सिसी ने अस्पताल जाकर बलात्कार की शिकार महिला से व्यक्तिगत रूप से माफी माँगी। यह महिला सिसी के निर्वाचित होने पर हुए सार्वजनिक जश्न में यौनिक हमले का शिकार बनी थी।

देखा न कि दूसरों के मत्थे मढ़ने के लिए।

स्वामीनाथन अन्क्लेश्वरिया अय्यर को कारपोरेट अर्थव्यवस्था के हितों का एक बड़ा विचारक माना जाता है। टाइम्स आफ इण्डिया के अपने कालम में उन्होंने प्रधानमंत्री मोदी से 'जोरदार' अपील की है कि वे आन्ध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री चंद्रबाबू नायडू की चौवन हजार करोड़ की किसानों की बैंक कर्जा-माफी स्कीम के लिए न धन दें और न इतना कर्ज बाजार से लेने का विकल्प ही उन्हें इस्तेमाल करने दें। अय्यर का तर्क है कि इस मुफ्तखोरी से एक तो कर्जा चुकाने का अनुशासन तार-तार होगा और दूसरे जिन किसानों ने अपने कर्जे चुकता कर दिए हैं उन्हें भी आगे से कर्जा न चुकाने की प्रेरणा मिलेगी। अय्यर का आगे कहना है कि असली गरीब किसान तो बैंक से कर्ज ले ही नहीं पाता। लिहाजा कर्जा-माफी की इस कवायद का फायदा उन बड़े किसानों को ही मिलेगा जिनकी पहुँच बैंक कर्जों तक होती है। यहाँ तक कि महिलाओं के सेल्फहेल्प समूह भी, जो बैंकों से कर्जे लेते रहते हैं, बजाय स्व-निर्भरता का पाठ पढ़ने के पर-निर्भरता के चक्र में उतर जायेंगे।

पहली नजर में लगता है कि अय्यर को अर्थव्यवस्था और ईमानदार किसानों की फिक्र सता रही है। पर कारपोरेट मुफ्तखोरी बल्कि विशुद्ध हरामखोरी पर उनकी चुप्पी उन जैसों की असली नीयत को सामने ला देती है। भारत के सरकारी बैंकों का दो लाख पचास हजार करोड़ रूपया पूंजीपतियों को कर्ज के रूप में बट्टेखाते में पड़ा हुआ है। यह रकम लगातार बढ़ती ही जा रही है। भारतीय रिजर्व बैंक का अनुमान है कि मार्च 2015 तक बट्टेखातेवाले कर्ज कुल बैंक कर्ज के सात प्रतिशत तक पहुँच जायेंगे। इसके बावजूद इस खुली लूट पर सरकार अंकुश नहीं लगा रही तो इसलिए क्योंकि यहाँ फायदा कारपोरेट वर्ग को मिल रहा है। इसीलिए इस वर्ग के अय्यर जैसे आर्थिक रणनीतिकार भी खामोश रहते हैं। उनके तमाम तर्कों को जैसे लकवा मार जाता है। अब न उन्हें कर्ज-वापसी के अनुशासन की फिक्र है और न ईमानदारी से कर्ज चुकानेवालों की भावनाओं की। सरकार के इस रवैय्ये पर भी वे मुंह नहीं खोलते कि इस लूट में शामिल बैंकरों और कारपोरेटों पर मुकदमा चलाये जाने की स्वीकृति वर्षों से नहीं दी गयी है। जबकि किसान रोज ही कर्ज न चुकाने पर बिना सुनवाई के जेलों में ठूंसे दिए जाते हैं।